आधी दुनिया को एक कमरे की तलाश...

अपना एक कमरा– वर्जीनिया वुल्फ़

डॉ. दीनानाथ मौर्य

"आप चाहें तो अपने पुस्तकालयों में ताले डाल दें, लेकिन मेरे मष्तिष्क की स्वतन्त्रता पर पाबन्दी लगाने के लिए न कोई दरवाज़ा, न ताला है और न कोई कुण्डी।"–वर्जीनिया वुल्फ़

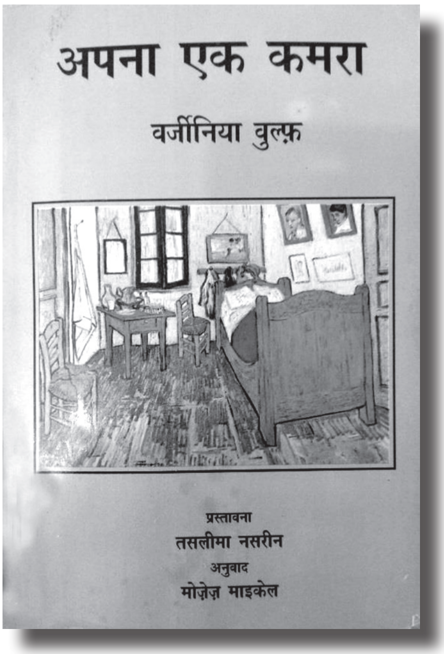

'अपना एक कमरा' पढ़ते हुए फ़िल्म पाकीज़ा का वह सीन याद आता है, जिसमें कोठे की नर्तकी एक दिन जब कहीं मुजरे के लिए जा रही होती है तो अपने पड़ोस की नर्तकी से ठिठोली करती है, "ज़रा एक दिन के लिए अपनी क़िस्मत मुझे दे दो, मुझे कल मुजरे में जाना है।" तो कोठे की दूसरी नर्तकी कहती है, "एक दिन के लिए क्या... तू तो हमेशा के लिए मेरी क़िस्मत ले ले।" यह संवाद फ़िल्म को देखते समय हास-परिहास के दौरान आता है, पर क्या इस संवाद का वितान केवल हास-परिहास तक ही है? कहना न होगा कि इस सवाल के उत्तर हमेशा नहीं में होगें। स्त्री जीवन की विषम स्थितियों के लिए ज़िम्मेदार समाज की पूरी संरचना पर यह संवाद एक सवालिया निशान लगाता है। जिस समाज में स्त्री की क़िस्मत की लकीर कोठे की दीवारों से खींच दी गई हो और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के लिए कोई जगह न हो तो भला ऐसे नसीब को क्या सहेजना? वर्जीनिया वुल्फ़ की पुस्तक अपना एक कमरा पढ़ते हुए यह बात बार-बार मन में उठती है कि स्त्री इयत्ता को समझने में अभी तक हमने क़दम-दर-क़दम भूल की है। एक कमरा जो उसे घर में मिलता है, एक कमरा जो उसे कार्यस्थल पर मिलता है– उस कमरे में दरअसल उसका अपना कितना क्या होता है? उसकी अपनी इच्छाओं, विचारों और स्वतन्त्र सोच के लिए। जब तक हम अस्मिताओं के प्रश्नों को किसी ख़ास अस्मिता के साथ जोड़कर समाधान के प्रयास करते रहेगें तब तक ये प्रश्न व्यापक मानव समाज की चिन्ताओं से दूर बने रहेंगे। वुल्फ़ अपनी पुस्तक में इसी व्यापक दृष्टि के साथ सामने आती हैं। पढ़ना और लिखना स्त्री जीवन में कैसे प्रवेश पाता है? और उसमें रुकावट की जो अड़चने हैं, किताब उन तमाम स्थितियों पर बात करती है। पुस्तक की मान्यता है कि स्त्री-पुरुष के बीच लैंगिक भेदभाव के उदाहरण जगह-जगह टकराते हैं। स्त्री होने के

कारण वह घास के मैदान पर नहीं चल सकती, उसके लिए बाज़ारवाला रास्ता है। पुरुषों के शिक्षालयों के लिए जहाँ सोना-चाँदी बरसता है, स्त्रियों के लिए ढंग की व्यवस्था नहीं है। भोजन में भी यह अन्तर साफ़ दिखाई देता है। स्त्रियों के लिए, उनकी माओं के लिए, आय के स्रोत नहीं हैं, अपनी आमदनी अपने पास रखने का अधिकार नहीं है। राजेन्द्र यादव की यह मान्यता कि दुनिया के सबसे पहले उपनिवेश का जन्म हमारे घर की चाहरदीवारी के अन्दर हुआ और इस तरह हमारे घर के भीतर क़ैद स्त्री दुनिया की पहली ग़ुलाम की श्रेणी में शुमार हुई। वुल्फ़ स्त्री-जीवन के उस पूरे सफ़र को अपने अध्ययन का विषय बनाती हैं जहाँ से सामाजिक स्थितियों के बीच उसकी अपनी अस्मिता का निर्माण होता है। पढ़ने-लिखने की दुनिया भी उसकी इस अस्मिता से अलग नहीं होती।

अपना एक कमरा स्त्री जीवन में सर्जनात्मक मूल्यों की खोज के क्रम में आगे बढ़ती है। सभ्यता के विकास में इस आधी दुनिया की भूमिका और उसकी अपने पढ़ने-लिखने की ज़मीन की तलाश लेखिका सभ्यता के ऐतिहासिक विकास क्रम के साथ करती हैं। वुल्फ़ द्वारा अक्तूबर 1928 में लिखित दो व्याख्यान पत्रों पर आधारित इस किताब की एक ख़ासियत यह है कि लेखिका के निजी अनुभवों से जुड़ते हुए पुस्तक व्यापक समूह के कुछ बुनियादी प्रश्नों पर बहस करती है। मसलन एक स्त्री जीवन में स्वतन्त्र चिन्तन का कितना अवकाश होता है? घर, परिवार, समाज के तमाम रिश्तों-नातों के बीच अपनी ख़ुद की ज़मीन बनाने की मशक़्क़त में कितनी ऊर्जा लगानी पड़ती है? सामाजिक आयामों के सघन सायों के बीच एक स्त्री का जीवन किस हद तक उसकी अपनी सम्पत्ति बन पाता है? अधिकार बोध की यह भावना भी किताब के पन्नों पर जगह पास की है। जैसा कि पुस्तक के फ्लैप पर मोज़ेज़ ने लिखा है– "स्त्री-पुरुष की इस भिन्नता को रेखांकित करते हुए वर्जीनिया वुल्फ़, शेक्सपियर की बहन जूडिथ का काल्पनिक चरित्र गढ़ती हैं। जूडिथ में भी अपने भाई जैसी ही विलक्षण प्रतिभा है। लेकिन, क्योंकि वह एक स्त्री है इसलिए, उसे अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का, लिखने का, अवसर नहीं मिलता। वह किशोरावस्था में ही भाग कर लन्दन पहुँच जाती है। वहाँ पुरुष शोषण की शिकार होकर वह आत्महत्या कर लेती है। यह आमस्थिति है, अपवाद नहीं। बहुत सम्भव है कि इसीलिए, तमाम व्यवधानों के बावजूद जो स्त्री कुछ लिखने में सफल हो भी जाती थी, वह छद्म पुरुष नाम चुनती थी। गुमनामी स्त्री की चयनित नियति हो जाती है। जार्ज इलियट इसका एक उदाहरण है।" लगभग 90 साल पहले लिखी गई इस पुस्तक के सवाल आज भी अनुत्तरित हैं।

पुस्तक व्यापक समूह के कुछ बुनियादी प्रश्नों पर बहस करती है। मसलन एक स्त्री जीवन में स्वतन्त्र चिन्तन का कितना अवकाश होता है? घर, परिवार, समाज के तमाम रिश्तों–नातों के बीच अपनी ख़ुद की ज़मीन बनाने की मशक्क़त में कितनी ऊर्जा लगानी पड़ती है? सामाजिक आयामों के सघन सायों के बीच एक स्त्री का जीवन किस हद तक उसकी अपनी सम्पत्ति बन पाता है? अधिकार बोध की यह भावना भी किताब के पन्नों पर जगह पा सकी है।

हमारे काम से कैसे जुड़ते हैं इस पुस्तक के विचार– अगर इस नज़रिए से इस किताब को देंखें तो पता चलता है कि बड़ी ही वैचारिक गम्भीरता के साथ पुस्तक इस पर बात करती है कि पढ़ने-लिखने की दुनिया के रिश्ते अस्मिता के इस पहलू से किस तरह जुड़ते हैं? शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ किस तरह एक जेण्डर के वैचारिक मानस के निर्माण में अपना योग देते हैं? स्कूल में जेण्डर के भेदभाव और लड़कियों की शिक्षा में आने वाली दुश्वारियों को भी समझने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में ऐतिहासिक विकास के साथ ही वुल्फ़ पढ़ने-लिखने की संस्कृति के साथ स्त्री जीवन के रिश्ते को बख़ूबी

उजागर करती हैं। वे लिखती हैं, "किसी भी स्त्री ने असाधारण साहित्य का एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा? या, सच कहें तो, उन्हें लिखने क्यों नहीं दिया गया? विवाह में भी, उसकी इच्छा का सम्मान क्यों नहीं किया गया? इंग्लैण्ड में भी, एक समय था जब बेटी अपने विवाह का विरोध नहीं कर सकती थी, और ऐसा करने पर उसे मारा-पीटा जाता था– क्यों? यथार्थ में इस दयनीय स्थिति को भोगने वाली स्त्री जब साहित्य में चित्रित होती है तो उसका रूप अलग ही होता है।" हमें अपने दैनिक जीवन में एक कमरे की ज़रूरत को समझने की ज़रूरत है। एक कमरे से अभिप्राय 'चिन्तन करने की शक्ति' और 'स्वयं के लिए सोचने की शक्ति' से है'। यह सारी बातें अवसर से जुड़ती हैं। शिक्षा का बुनियादी काम अगर सामाजिक बदलाव है तो आधी दुनिया की पूरी आबादी को पढ़ने-लिखने और स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर देना होगा। उन्हें पूरी तरह से सामाजिक विकास की धारा से जोड़ना होगा। उनकी रचनात्मक ऊर्जा को महत्त्व देकर उन्हें भी अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता देनी होगी। इस सारे कार्य में समाज, स्कूल और शिक्षक की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझने की भी ज़रूरत है। स्वतन्त्रता, समता और लोकतान्त्रिक मूल्यों के व्यावहारिक आयाम इसी तरह की बराबरी के साथ आकार लेते हैं....

वर्जीनिया वुल्फ़ की पुस्तक *अपना एक कमरा* आपने पढ़ी ही होगी... यदि अभी तक नहीं पढ़ी है तो ज़रूर पढ़िएगा... समय मिलने पर ही नहीं, समय निकालकर भी।

अंग्रेज़ी में मूल पुस्तक का नाम *'द रूम ऑफ वन्स ओन'* है।

दीनानाथ मौर्य दो दशक से भाषा शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषाएँ विभाग में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत हैं।
सम्पर्क : dnathjnu@gmail.com